International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030, Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 187-189

गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में जीवन दृष्टि

डॉ० राजेन्द्र सिंह
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जनता कॉलेज, चरखी दादरी, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

गिरिजाकुमार माथुर प्रयोगवादी कविता के सशक्त एवं हीरक हस्ताक्षर हैं। इनके काव्य में विभिन्न दशाओं और दिशाओं का अतुलनीय सामञ्जस्य स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। ये नित्य नवीनता के पक्षधर रहे हैं। काव्य के क्षेत्र में नित नए प्रयोग करने वाले, परम्परा को नकार नव पथ का अन्वेषण करने वाले नई कविता के रोमांटिक कवि माथुर की जीवनदृष्टि नवीनता की पक्षधर रही है। साथ ही मालवा की मिट्टी के प्रति भावनात्मक लगाव भी देखते बनता है। काव्य के क्षेत्र में इनका लगाव विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण इसलिए भी है कि इनकी नई कविता एक तरफ जहाँ व्यक्तिगत पीड़ा को अभिव्यक्त करती है एवं साथ ही आक्रामकता का समाहन भी किए हुए है, वहीं दूसरी तरफ अकविता में प्रवेश करने के उपरान्त भी जीवन के सत्य और तथ्यों को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करती है। इनकी कविता निज पीड़ा बोध की अभिव्यक्ति करती है परन्तु कहीं भी जीवन एवं समाज से विमुख दिखाई नहीं देती अपितु समाजोन्मुखी एवं जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखने वाली है।

माथुर जी की कविताएँ मानवीय संवेदनाओं और सरोकारों की कविताएँ हैं। केवल यही नहीं इनके काव्य में मानवतावादी दृष्टिकोण के साथ–साथ लोक कल्याण की भावना की प्रचूर मात्रा में मिलती है। कवि को मानवतावादी दृष्टि जहाँ भी प्रभावित दिखाई देती है तो वह कराह उठता है। 'एशिया का जागरण' नामक कविता में वेदना के स्वर की अभिव्यक्ति देखिए–

''मेरी मानवता पर रखा गिरि या सत्ता का सिंहासन
मेरी आत्मा पर बैठा है, विषधर सा सामंती शासन
मेरी छाती पर रखा हुआ साम्राज्यवाद का रक्त कलश।''[1]

माथुर जी ने तत्कालीन जीवन यथार्थ एवं विश्वव्यापी समस्याओं के प्रति चिन्ता प्रकट की, साथ ही उसका समाधान भी प्रस्तुत किया है। जीवन एवं जगत् के प्रति माथुर जी का दृष्टिकोण साफ–स्पष्ट है। इन्होंने एक साथ कई तथ्यों एवं सत्यों का उद्घाटन 'धूप के धान' नामक काव्य–संग्रह में इस प्रकार किया है–

'आइनों से गाँव होते
घर न रहते धूल कूड़ा
जम न पाता जिन्दगी पर
युगों का इतिहास घूरा।''[2]

इस तरह कवि लोक–कल्याण की कामना करता है ताकि लोगों का जीवन स्तर उन्नति की ओर अग्रसर हो सके उनके सारे जीवन कलुष समाप्त हो सके, साथ ही मानव जीवन में आने वाली सभी समस्याओं का निराकरण भी किया जा सके। माथुर जी कहते हैं–

मृत्यु सा सून–सान बनकर
जो बनैला प्रेत फिरता
खाद बन जीवन फसल की
लोक मंगल रूप धरता
रंग मिट्टी का बदलता
नीर का सब पाप धुलता
हरे होते पीत ऊसर
स्वस्थ हो जाती मनुजता।।''[3]

मानव स्वभाव सदैव ही स्वार्थी रहा है। स्वार्थ की इसी प्रवृत्ति ने व्यक्ति को अहं की ओर धकेला है, जहाँ से उसे केवल निजी हित ही दिखाई देते हैं। जिसके फलस्वरूप लोगों में व्यक्तिगत भेदभाव को बढ़ावा मिला। ऐसे युग परिवेश में जब कवि माथुर जी ने पदार्पण किया तो उन्होंने जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाकर संकल्पबद्धता के साथ जीवनगत समस्याओं को पहचानकर सृजनात्मकता का परिचय दिया एवं परम्परागत जीवनदृष्टि और मान्यताओं से परे नवीन राहों का अन्वेषण किया। इन्होंने संघर्ष को जीवन का अनिवार्य तत्त्व मानते हुए कहा है–

''जब अपने ही लिए जीने लगते हैं आदमी
तब उनकी हर चीज बिकाऊ हो जाती है
जब जोखिम उठाने की आदत मिट जाती है
हर कौम मर जाती है।''[4]

आधुनिक युग–परिवेश तीव्र गति से परिवर्तन की ओर अग्रसर है। साहित्यकारों ने जीवन और समाज में हो रहे इस परिवर्तन को पहचाना और अपने दायित्व का निर्वहन करते हुए मानव एवं मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित किया। साथ ही पुराने एवं जर्जर परम्पराओं को तोड़कर जीवन में नव्यता लाने का सार्थक प्रयास किया। कवि प्राचीन एवं निरर्थक रूढ़ियों त्यागने की बात करता है क्योंकि इनसे जीवन में नवीनता का समावेश नहीं होता–

''पुराना मकान
फिर पुराना ही होता है
उखड़ा हो पलस्तर
खार लगी चनखारियाँ
टूटी मेहराबें
धुन लगे दरवाजे
सील भरे फर्श
झरोखे, अलमारियाँ
कितनी ही मरम्मत करो
चेप लगाओ
रंग रोगन करवाओ
चमक नहीं आती है
रूप न संवरता है
नीवं वही रहती है
कुछ भी न बदलता है।''[5]

इस प्रकार मनुष्य को प्राचीन रूढ़ियों और परम्पराओं को त्याग देना चाहिए क्योंकि वे अनुपयोगी हो चुकी हैं। जो व्यक्ति और समाज की प्रगति में बाधक हैं। अतः जब तक हम इन मृत परम्पराओं के मोह को नहीं छोड़ते तब तक नवीन जीवन दृष्टि का संचार सम्भव नहीं है। माथुर जी कहते हैं–

''नई दुनिया की चुनौतियाँ
नई चीजों की आधियाँ
घर हो–
या व्यवस्था हो
नक्शा यदि बदला नहीं
नया कुछ हुआ नहीं
बखिए उधेड़ता
वक्त तेजी से आता है
जो कुछ है सड़ा गला
सब कुछ ढ़ह जाता है।''[6]

आज भौतिक उन्नति एवं प्रतिस्पर्धा की इस अंधी दौड़ ने व्यक्ति को जीवन से पलायनवादी बना दिया है। फिर वह पलायन चाहे सामाजिक जीवन से हो या फिर गांव से शहर की ओर हो या किसी अन्य स्तर पर। इस सारे क्रिया–कलाप से व्यक्ति के जीवन में अनेक समस्याओं ने जन्म लिया। इस संदर्भ में माथुर जी जीवन–सत्य की अभिव्यक्ति इस प्रकार करते हैं–

''यों तो नगर ने मुझे बहुत कुछ दिया है
विद्या, नया संस्कार, काम, रोमांस, कुंठा
ठोकरें, अपमान
लेकिन
मुझ से मेरे भीतर का
गांव जन्मा सहज प्यार ले लिया है
X X X
मामूली आदमी की तरह
जीने का सुख भी
रहने नहीं दिया है।''[7]

आज व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए लोग किसी भी सीमा तक गिर सकते हैं। व्यक्तित्व का विघटन होने से पारिवारिक एवं सामाजिक ढांचा अस्त–व्यस्त हो गया है। इन सब के परिणामस्वरूप जीवन एवं जीवन–मूल्य निश्चित रूप से प्रभावित हुए। व्यक्ति एवं सामाजिक विघटन का यह क्रम जीवन चक्र को लगातार रूप से प्रभावित कर रहा है। 'षाम की धूप' नामक कविता में माथुर जी कहते हैं–

''किंतु इसका गम नहीं कुछ भी
बन गया जब अभाव ही जीवन
छिन्न हैं जब समाज के सब तार
मानवी बन्धनों की टूट गई कड़ियाँ
जिन्दगी का बहाव बन्द हुआ
एक रसधार रूकी, न्यून हुई, सूख गई
क्योंकि उद्‌गम ही कट गया उसका।''[8]

माथुर जी दृष्टि जीवन के लगभग सभी आयामों को स्पर्ष करती है। इन्होंने अनुभूतिगत सत्य की अभिव्यक्ति की है, फिर चाहे वह मानसिक हो, व्यक्तिगत हो या सामाजिक हो। इन्होंने जीवन के प्रत्येक तथ्य और सत्य का जीवन्त चित्रण किया है क्योंकि ''जीवन का सत्य व्यक्ति की छाप से युक्त होकर काव्य का सत्य बन जाता है।''[9] माथुर जी इसी जीवन–सत्य की अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं–

''मैं शुरू हुआ मिटने की सीमा रेखा पर
रोने में था आरम्भ किन्तु गीतों में मेरा अंत हुआ
मैं एक पूर्णता के पथ का कच्चा निशान
अपनी अपूर्णता के पूरन में
एक अधूरी कथा।''[10]

माथुर जी ने जब काव्य–क्षेत्र में पदार्पण किया तो उस समय जीवन और कविता दोनों में संघर्ष काल चल रहा था। ऐसे संक्रमणकाल में इन्होंने मानवतावादी सिद्धांत का प्रतिपादन किया ताकि मानव जीवन सुखी एवं समृद्ध हो सके। अतः ऐसे परिवेश में कवि के लिए ''मानव को उसकी समस्त श्रेष्ठताओं और न्यूनताओं के साथ अभिव्यक्ति करना अधिक संगत है। गलित ग्रहित के साथ मानव को अंगीकृत कर मानव को गले लगाना बड़े साहस का काम है। इसे कोई विषपायी शिव ही कर सकता है दूसरे किसी की सामर्थ्य नहीं।''[11] इस प्रकार ऐसा कर्म कवि ही कर सकता है जो सदैव लोक–कल्याण की बात करता है। इसके लिए उसे चाहे कितना ही संघर्ष क्यों न करना पड़े। वह आम आदमी की पीड़ा को अपना वर्ण्य विषय निश्चित रूप से बनाता है। माथुर जी कहते हैं–

''हम सब बौने हैं
मन से मस्तिष्क से भी
भावना से चेतना से भी
बुद्धि से, विवेक से भी
क्योंकि हम जन हैं साधारण हैं
हम नहीं हैं विशिष्ट, क्योंकि हम जमाना हमें
चाहता है बौने रहे, वरना मिलेंगे कहाँ
वक्ता को श्रोता, नेता को पिछलगुए
बुद्धिजनों को पाठक।।''[12]

नयी कविता में व्यक्ति–स्वातंत्र्य और क्षणानुभूति का विशिष्ट योगदान रहा है। इस युग के ''कवि वैयक्तिक चेतना के प्रति जागरूक, प्रबुद्ध प्राणी हैं। व्यक्ति–अस्तित्व को केन्द्र में स्थापित करके वह समष्टिगत जीवन–परिवेश, यर्थाथ एवं दायित्व निर्वहन आदि की ओर प्रवृत्त होता है। इस आत्यांतिक वैयक्तिकता के कारण नई कविता में भोगवाद, अकेलापन, अहंवाद अस्तित्ववाद, वास्तविकता, परम्परा–भजन आदि प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती है।''[13] और इधर अत्यधिक भौतिकवादिता और वैयक्तिकता की भावना से मानव जीवन में वेदना लगातार रूप से बढ़ती जा रही है। कवि माथुर जन–मन की पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहते हैं–

''हम सब इन्हीं के लिए
युग युग से जीते हैं
क्रीत दास हैं हम
इतिहास बसन सीते हैं
हम सब तो स्याही हैं
विजय सभी उनकी
हम घायल सिपाहीं हैं।''[14]

आधुनिकता की इस अंधी दौड़ में व्यक्ति क्षणवादी हो गया है क्योंकि जीवन के प्रत्येक क्षण में उसे कोई न कोई अनुभूति होती रहती है। अतः आज का व्यक्ति भी क्षणिक अनुभूति का लाभ उठता है। उसे आदि अंत के संदर्भ में कोई चिन्ता नहीं है।'चंदरिमा' नामक कविता

में कवि क्षणिक अनुभूति को इस प्रकार अभिव्यक्त करता है–

''यह झकाझक रात
चांदनी उजली कि सुई में पिरो लो ताग
चांदनी को दिन समझकर बोलते हैं काग
हो रही ताजी सफेदी नए चूने से
पुत रहे घर द्वार
X X X
चिकनी चमक का दलदार
यह नहीं चेहरा तुम्हारा
गोल पूनम–सा
मंसल चिकने तनका
क्योंकि यह तो सामने ही दिख रहा।''[15]

निष्कर्ष

रूप में कहा जा सकता है कि कवि गिरिजाकुमार माथुर ने अपने काव्य में जीवन–समर में आने वाली समस्याओं का जीवन्त चित्रण कर जीवन को नवीनता प्रदान करने का मौलिक प्रयास किया है लेकिन घोर स्वार्थ की भावना से व्यक्ति के जीवन में अनेक परिवर्तन भी देखने को मिलते हैं। इस परिवर्तित युग परिवेश में संघर्ष तत्त्व जीवन का अभिन्न अंग बन गया है और संघर्ष से जझूने वाला व्यक्ति जीवन एवं समाज को उन्नति की ओर ले जाता है। इस प्रकार कवि माथुर ने जन–मन की वेदंना को अपना वर्ण्य विषय बना कर युग–परिवेश की समस्याओं, हलचलों एवं अभावों को अपने काव्य में पिरोकर लोगों के जीवन में चेतना लाने का सार्थक प्रयास किया। अतः इनके काव्य में एक तरफ जहाँ अभाव ग्रस्त व्यक्ति की दयनीय आर्थिक दशा, भूख, क्षोभ, कुंठा, संत्रास आदि का उल्लेख मिलता है, वहीं दूसरी तरफ व्यक्ति एवं समाज के स्वर्णिम भविष्य की कामना भी की गई है ताकि लोक जीवन में आने वाली बाधाओं को दूर किया जा सके और जीवन स्तर को समृद्ध किया जा सके। वास्तव में, माथुर जी के काव्य में जीवन एवं जगत् के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण दिखाई देता है।

संदर्भ सूची

1. गिरिजाकुमार माथुर, धूप के धान, पृ. 10।
2. वही, वही, पृ. 92।
3. वही, वही, वही।
4. वही, साक्षी रहे वर्तमान, पृ. 62।
5. वही, मैं वक्त के हूँ सामने, पृ. 56।
6. वही, वही, वही।
7. वही, साक्षी रहे वर्तमान, पृ. 45।
8. वही, धूप के धान, पृ. 27।
9. अज्ञेय (संपा) तीसरा सप्तक (भूमिका) पृ. 19।
10. गिरिजाकुमार माथुर, तार सप्तक, पृ. 165।
11. वही, नयी कविताः सीमाएँ और संभावनायें, पृ. 135।
12. वही, जो बंध नहीं सका, पृ. 9–10।
13. प्रेम शंकर, नई कविता : नया मूल्यांकन, पृ. 66।
14. गिरिजाकुमार माथुर, साक्षी रहे वर्तमान, पृ. 9।
15. वही, धूप के धान, पृ. 65।